



डॉ. धर्मवीर की प्रेमचंद सम्बन्धी आलोचना की आलोचना

शिव कुमार रविदास

सहायक प्राचार्य, एस. बी. ए. एन. महाविद्यालय, मगध विश्विद्यालय, बोधगया, बिहार, भारत

प्रस्तावना

'प्रेमचंद: सामंत का मुंशी' में डॉ. धर्मवीर की प्रेमचंद सम्बन्धी आलोचना काल्पनिक कथ्य पर आधारित है, जिसका 'कफ़न' कहानी में कहीं भी संकेत नहीं मिलता है। इस आलोचनात्मक पुस्तक में डॉ. धर्मवीर का नज़रिया अलग है जबकि 'कफ़न' कहानी में प्रेमचंद का नज़रिया अलग।

डॉ. धर्मवीर की इस बात से सहमत होना लाजमी है कि 'भेष बदल कर प्रतिक्रियावाद फैलानेवाला कोई आदमी जनवादी या सामाजिक सुधारक नहीं हो सकता है।' यह भी माना जा सकता है कि 'वर्ग संघर्ष और असमानता दूर करने के इस संघर्ष में एक सोपान ऐसा भी आता है जब सामंत अपनी प्रजा की बात सुनता है और अपनी आवाज में उसकी आवाज मिलाता है।¹ मैं लोगों के इस छद्म रूप के पर्दाफाश करने का भी समर्थन करता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि ये छद्म-रूप-धारी तथाकथित प्रगतिशीलता के प्रचारक व 'प्रगतिशील नेता' आन्दोलन को दीमक की भांति भीतर ही भीतर खोखला करते चले जाते हैं। लेकिन डॉ. धर्मवीर के इस आरोप को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि प्रेमचंद भी ऐसा ही छद्म-रूप-धारी प्रगतिशील लेखक थे।

दरअसल प्रगतिशीलता एक विचार है, जिसमें लगातार विकास होता रहता है। प्रगतिशीलता किसी व्यक्ति में जन्मजात नहीं आ जाती है। यह तो जीवन और समाज के ताने-बाने को देखने समझने के बाद जीवन-संघर्षों तथा अनुभवों से अर्जित की जाती है। प्रेमचंद ने जिस प्रगतिशील विचार की उद्घोषणा की है, उसे उन्होंने भी यथार्थ के ठोस धरातल पर, अपने जीवनानुभवों से ही प्राप्त किया था। हिन्दू धर्म की संरचना, स्वाधीनता संग्राम में नेतृत्वकारियों की भूमिका तथा 'स्वराज' के बारे में उनकी समझ समय के साथ और अधिक पैनी तथा परिपक्व होती चली गई एवं उनके विचारों में लगातार सकारात्मक परिवर्तन होते रहे। इसे भी नहीं भूलना चाहिए। जीवन के अंतिम दिनों में आदर्श और श्रद्धा को छोड़कर वह पूर्णता यथार्थ की ओर मुड़ गए। इतना ही नहीं जिस गाँधी और गाँधीवादी स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति उनको गहरा विश्वास था, वह विश्वास भी समाप्त हो चला था।

बहुत बार ऐसा होता है कि व्यक्ति के विचार और जीवनचर्या में एक फाँक रह जाता है। अपने ही विचारों को जीवन में उतारते वक्त व्यक्ति को अनेक प्रकार के संघर्षों से गुजरना पड़ता है। प्रेमचंद के जीवन में भी ऐसा ही है। लेकिन सवाल यह है कि क्या जब तक व्यक्ति के जीवनचर्या और विचार में साम्यता नहीं मिले तब तक हम उस विचार को ही संदिग्ध माने? रचनाकार के सिलसिले में यह बात और भी विचारणीय हो जाती है। रचनाकार अपनी रचनाओं में उस संसार की सृष्टि करता है, जैसा वह भविष्य में देखना चाहता है। लेखक अपने मन के विचारों को घटित होते हुए अपनी रचनाओं में दिखाता है।

सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता साहित्य में घटित होते विचार से प्रेरणा लेकर उन विचारों को समाज में उतारने का प्रयास करता है। वह एक नई दृष्टि पाता है। उधर साहित्यिक रचनाओं का जनता पर भी यह असर होता है कि सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए अनुकूल जमीन तैयार मिलती है। इसप्रकार से रचना और रचनाकार के प्रगतिशील विचार की सार्थकता पुष्ट होती है। फिर इस प्रक्रिया द्वारा साहित्य उस मुकाम तक पहुंचता है जिससे हम यह कामना करते हैं कि 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल हो!'² नये अनुसंधान एवं अनुशीलन से वर्तमान में प्रेमचंद के रचनाओं की अनेक सीमाएं सामने आ रही हैं किन्तु इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता है कि दलित साहित्य के गद्य रचनाओं के प्रकाशित होने से पूर्व हिंदी भाषी क्षेत्रों में दलित जीवन की दुरुहता से गैर-दलित समाज को अवगत कराने तथा गैर-दलितों में दलित समाज के प्रति संवेदना पैदा करने में प्रेमचंद की रचनाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसके बाद हम पुनः धर्मवीर के उस आरोप पर लौटते हैं जिसमें उन्होंने स्त्री-संबन्धी व्यवहार और दलित समस्या को लेकर प्रेमचंद को छद्म भेषधारी, सामंती विचारधारा के लेखक व 'सामंत के मुंशी' कहा है।³ जहां प्रेमचंद की कमजोरी है उसे स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। यह बात सही है कि प्रेमचंद के विचार स्त्रियों के प्रति बहुत स्वस्थ नहीं थे। यह भी सही है कि प्रेमचंद अधिक पढी-लिखी स्त्रियों को पसंद नहीं करते थे। उन्होंने स्त्रियों को आर्थिक रूप से मजबूत बनाकर भी पेश नहीं किया है। यह भी बात सही है कि प्रेमचंद उसी स्त्री को ठीक मानते थे जो घर-गृहस्थी के अनुरूप रहती हो। इन सभी विचारों का प्रकटीकरण 'गोदान' में हुआ है। ये प्रेमचंद की सीमाएं हैं।

दलित समस्या के प्रसंग में भी प्रेमचंद की यह सीमा स्वीकार करने योग्य है कि उन्होंने दलितों की समस्या को ठीक ढंग से नहीं पहचाना है। हालांकि दलित समस्या का चित्रण उन्होंने यथार्थपूर्ण और बहुत ही मार्मिक ढंग से किया है फिर भी उन समस्याओं के समाधान हेतु कोई ठोस सुझाव या संघर्ष पेश नहीं किया है। जबकि उस वक्त अम्बेडकर का दलित मुक्ति आन्दोलन अपने चरम पर था तथा तत्कालीन राजनीति को झकझोर कर रख दिया था। अब सवाल यह है कि प्रेमचंद की ये सीमाएं उनके विचारों की सीमाएं हैं? उनके व्यक्तित्व की सीमाएं हैं? अथवा उनकी सोची समझी चाल?

डॉ. धर्मवीर का यह कहना सही है कि पुनर्जन्म में विश्वास और दलित समस्या का समाधान दोनों एक साथ नहीं चल सकते।⁵ लेकिन प्रेमचंद को कायस्थ जाति से सम्बंधित होने मात्र से उन्हें 'सामंत का मुंशी' कह देना अतार्किक ही नहीं हास्यास्पद भी लगता है। यह ब्राह्मणवादी मानसिकता को ही पुष्ट करती है। ऐसी आलोचना निराधार है और आलोचना की कसौटी में फिट नहीं बैठती।

इस पूरी आलोचनात्मक पुस्तक में यह कहीं भी दिखाई नहीं देता है कि डॉ. धर्मवीर स्त्रियों के अधिकार की बात करते हों। वह स्त्रियों को किसी परिवार की महज 'मान-मर्यादा' और वंश को आगे बढ़ाने के उपक्रम की तरह से देखते थे। उनके लिए सबसे बड़ी समस्या 'जार-कर्म' की समस्या थी। क्यों नहीं डॉ. धर्मवीर 'शुचिता बोध' को तिलांजलि देकर 'जार-कर्म' की प्रासंगिकता को ही खत्म कर दिए। 'कफ़न' में 'जार-कर्म' की बात नहीं आई है। वहां दूसरे प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। अतः डॉ. धर्मवीर द्वारा 'जार-कर्म' के आधार पर 'कफ़न' की आलोचना अनुचित जान पड़ती है।

संदर्भ सूची

1. डॉ धर्मवीर, 'प्रेमचंद: सामंत का मुन्शी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2007, पृ.-9
2. प्रेमचंद, 'कुछ विचार', लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण:2013, पृ.-20
3. डॉ धर्मवीर, 'प्रेमचंद: सामंत का मुन्शी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2007, पृ.-18,35
4. वही, पृ.-26